शोधामृत
(कला, मानविकी और सामाजिक विज्ञान की सहकर्मी समीक्षित, मूल्यांकित, त्रैमासिक शोध पत्रिका)

ISSN : 3048-9296 (Online)
3049-2890 (Print)
IIFS Impact Factor-4.0
Vol.-3; issue-2 (April-June) 2026
Page No- 140-144
DOI :-10.71037/Shodhaamrit.v3i2.22
©2026 Shodhaamrit
https://shodhaamrit.gyanvividha.com
Author's :

Vinod Kumar Rathi

Corresponding Author :

Vinod Kumar Rathi

खेजड़ी-आधारित कृषि-परितंत्र और सूखा-लचीलापन : शेखावाटी क्षेत्र का भौगोलिक अध्ययन

सारांश : शेखावाटी क्षेत्र का कृषि-परिदृश्य कम वर्षा, अनिश्चित मानसून, रेतीली-पथरीली भूमि, गिरते भूजल स्तर और बार-बार लौटते सूखा-संकटों के बीच विकसित हुआ है। ऐसे कठिन भौगोलिक परिवेश में खेजड़ी केवल एक वृक्ष नहीं, बल्कि कृषि, पशुधन, मृदा, जल और ग्रामीण आजीविका को जोड़ने वाली जीवित पारिस्थितिक धुरी है। प्रस्तुत शोध-पत्र सीकर, झुंझुनू और चूरू से निर्मित शेखावाटी क्षेत्र में खेजड़ी-आधारित कृषि-परितंत्र की सूखा-लचीलापन बढ़ाने वाली भूमिका का भौगोलिक अध्ययन करता है। अध्ययन से स्पष्ट होता है कि खेजड़ी अपनी गहरी जड़ों, नत्रजन-स्थिरीकरण, पत्ती-कचरे, छाया, सांगरी, लूंग और पशु-चारे के माध्यम से खेत की उत्पादकता तथा ग्रामीण जीवन की स्थिरता को सहारा देती है। यह वृक्ष फसल-विफलता की स्थिति में वैकल्पिक खाद्य, चारा और आय-स्रोत उपलब्ध कराकर सूखे के प्रभाव को कम करता है। किंतु कृषि-यंत्रीकरण, गहरी जुताई, भूजल-निर्भरता, रोग, कीट और वृक्षों की घटती संख्या इस परितंत्र को संकटग्रस्त कर रहे हैं। निष्कर्षतः शेखावाटी का वास्तविक सूखा-लचीलापन खेजड़ी, फसल, पशुधन, चारागाह और जल-संचयन की संयुक्त व्यवस्था में निहित है।

मुख्य शब्द : खेजड़ी, कृषि-परितंत्र, सूखा-लचीलापन, शेखावाटी, कृषि-वनीकरण, पशुधन, जल-संचयन, भूजल।

1. परिचय : मरुस्थलीय और अर्ध-शुष्क प्रदेशों में हरियाली का अर्थ केवल वनस्पति की उपस्थिति नहीं, बल्कि जीवन की निरंतरता है। जब बादल अनुपस्थित होते हैं, तब खेजड़ी धरती की गहराई से हरियाली का उत्तर लिखती है। इसीलिए अनीता माथुर ने इसे "राजस्थान की सांस्कृतिक, आर्थिक और सामाजिक धरोहर" कहा है (माथुर 1)। यह कथन भावात्मक प्रतीक भर नहीं; इसके भीतर एक समूचे ग्रामीण अर्थतंत्र का अनुभव निहित है। सांगरी भोजन है, लूंग चारा है, पत्ती खाद है, छाया पशु और मनुष्य दोनों के लिए ताप से राहत है, और खेत में उसकी उपस्थिति मिट्टी के दीर्घकालिक स्वास्थ्य का संकेत है (समादिया 1–3)।

शेखावाटी की पहचान प्रायः हवेलियों, भित्तिचित्रों और प्रवासन-कथाओं से की जाती है, किंतु उसका ग्रामीण भूगोल खेतों में खड़ी खेजड़ी, बाजरे की कतारों, पशु-बाड़ों और वर्षाजल-संचयन की संरचनाओं से भी बनता है। सीकर, झुंझुनू और चूरू में फैला यह प्रदेश अरावली की पहाड़ी-पादभूमि से पश्चिमी रेतीले मैदानों तक विस्तृत है; अतः यहाँ मिट्टी, ढाल, वर्षा और भूजल की दशाएँ समान नहीं हैं। यही विषमता कृषि के जोखिम को स्थानानुसार बदलती है और खेजड़ी की भूमिका को भी कहीं खेत-वृक्ष, कहीं चारा-स्रोत, कहीं मृदा-रक्षक तथा कहीं सांस्कृतिक स्मृति के रूप में सामने लाती है (जांगिड़ 88–101; जानू 2046–2054)।

प्रचलित कृषि-विमर्श अक्सर उत्पादन को प्रति हेक्टेयर उपज से मापता है, जबकि सूखा-प्रवण भूगोल में अधिक महत्त्वपूर्ण प्रश्न यह है कि खराब वर्ष में खेत, पशु और परिवार कितना टिक पाते हैं। खेजड़ी-आधारित व्यवस्था का मूल्य इसी प्रतिकूल वर्ष में खुलता है: फसल घटे तो पत्ती और फलियाँ पशुधन तथा परिवार के लिए वैकल्पिक संसाधन बनते हैं; मिट्टी में जैविक पदार्थ और नमी का संरक्षण अगली ऋतु की पुनर्प्राप्ति को सुगम बनाता है। अतः इस अध्ययन का मूल तर्क है कि खेजड़ी को पृथक वृक्ष नहीं, बल्कि जोखिम-वितरण करने वाले कृषि-परितंत्र की केंद्रीय कड़ी के रूप में पढ़ा जाना चाहिए (सिंह आदि, 2004; कर और चारण, 2009)।

2. अध्ययन क्षेत्र का भौगोलिक परिप्रेक्ष्य : शेखावाटी का भौतिक स्वरूप अत्यधिक विविध है। पूर्व और दक्षिण-पूर्व में अरावली से संबद्ध पहाड़ियाँ तथा पादप्रदेश हैं, मध्य भागों में अपेक्षाकृत समतल कृषि-मैदान, और पश्चिम की ओर बालुई धरातल व मरुस्थलीय प्रभाव बढ़ता जाता है। ग्रीष्म ऋतु में तीव्र ताप, शीतकाल में उल्लेखनीय ठंड और मानसूनी वर्षा की अनिश्चितता कृषि-कैलेंडर को अस्थिर बनाती है; प्राकृतिक वनस्पति विरल है, किंतु खेजड़ी जैसी मरु-अनुकूल प्रजातियाँ इस विरलता में भी परिदृश्य की निरंतरता बनाए रखती हैं (जांगिड़ 96, 101)। मौसम की अनिश्चितता के कारण बुवाई, निराई, चारा-संग्रह और पशुधन-प्रबंधन के निर्णय समय-संवेदी हो जाते हैं (केंद्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान और भारत मौसम विज्ञान विभाग, 2010)।

इस क्षेत्र में जल-संकट का स्वरूप केवल कम वर्षा तक सीमित नहीं है। कृषि-गहनता, नलकूपों, अधिक जल चाहने वाली फसलों और यांत्रिक कृषि के विस्तार ने भूजल पर दबाव बढ़ाया है। सीकर जिले पर आधारित शोध-प्रबन्ध कृषि तथा पशु-संपदा दोनों पर गिरते भूजल के प्रभाव को रेखांकित करता है, जबकि झुंझुनू में शस्य-गहनता की वृद्धि सिंचाई और आधुनिक तकनीक की बढ़ती भूमिका दिखाती है (यादव, 2021; जानू 2051–2054)। यह विरोधाभास महत्त्वपूर्ण है: अल्पकाल में सिंचाई उत्पादन बढ़ाती है, पर दीर्घकाल में भूजल-ह्रास उस उत्पादन की पर्यावरणीय नींव को कमजोर कर सकता है।

3. सैद्धान्तिक ढाँचा और शोध-विधि : इस अध्ययन में 'कृषि-परितंत्र' को खेत की सीमा में बंद जैविक इकाई नहीं, बल्कि वृक्ष, फसल, मृदा, पशुधन, जल, परिवार, बाजार और स्थानीय ज्ञान के परस्पर संबंधों से निर्मित भौगोलिक तंत्र माना गया है। खेजड़ी इस तंत्र में ऊर्ध्वाधर और क्षैतिज दोनों प्रकार से संसाधनों को जोड़ती है: उसकी जड़ें गहरे मृदा-स्तरों से नमी और पोषक तत्त्व ग्रहण करती हैं, छत्र खेत की सूक्ष्म जलवायु को प्रभावित करता है, पत्तियाँ पशु-आहार बनती हैं, और पशु-मल पुनः खेत की उर्वरता में लौटता है (समादिया 2–3; मेघवाल आदि 2–3)। इस प्रकार वृक्ष और कृषि के बीच संबंध प्रतिस्पर्धा की अपेक्षा पूरकता का हो सकता है।

'सूखा-लचीलापन' को यहाँ सूखे को रोकने की क्षमता नहीं, बल्कि उसके आघात को सहने, संसाधनों का वैकल्पिक उपयोग करने, जीविका को बनाए रखने और अगली ऋतु में पुनः उत्पादन आरंभ करने की सामर्थ्य के रूप में परिभाषित किया गया है। इसके पाँच विश्लेषणात्मक आयाम हैं। पारिस्थितिक अवरोधन, उत्पादन-विविधता, चारा एवं खाद्य सुरक्षा, जल-स्मृति और सामाजिक अनुकूलन। मरुक्षेत्र के संदर्भ में यह दृष्टि इसलिए उपयुक्त है कि "पशुधन और मरु वनस्पति ही यहाँ के जीवन का आधार" हैं (नारायण, कविया और सिंह 7)। अतः फसल की विफलता को अकेले नहीं, पशुधन, वृक्ष और जल-संचयन से उसके संबंध में समझना आवश्यक है।

4. चर्चा एवं विश्लेषण : शेखावाटी क्षेत्र में खेजड़ी केवल एक वृक्ष नहीं, बल्कि कृषि, पशुधन, जल-संरक्षण और ग्रामीण आजीविका को जोड़ने वाली एक जीवित पारिस्थितिक अवसंरचना है। इसकी गहरी जड़ें भूमिगत नमी और

पोषक तत्त्वों तक पहुँचती हैं तथा जड़ों में उपस्थित सहजीवी जीवाणु नत्रजन-स्थिरीकरण में सहायता करते हैं। गिरी हुई पत्तियाँ मिट्टी में जैविक पदार्थ की मात्रा बढ़ाती हैं, जिससे भूमि की उर्वरता और जलधारण क्षमता में सुधार होता है। इसी कारण खेजड़ी को स्थानीय स्तर पर "मित्र-वृक्ष" के रूप में देखा जाता है और बाजरा, ग्वार, मोठ, मूँग, तिल तथा चवला जैसी फसलों के साथ इसकी संगति कृषि-उत्पादन प्रणालियों में विशेष महत्त्व रखती है (समादिया 1–2)।

खेजड़ी की उपयोगिता केवल इसके प्रत्यक्ष उत्पादों—सांगरी, खोखा, लूंग और लकड़ी—तक सीमित नहीं है। यह मृदा-संरक्षण, वायु-क्षरण नियंत्रण, तापमान संतुलन तथा जैव-विविधता के संरक्षण जैसी महत्त्वपूर्ण पारिस्थितिक सेवाएँ भी प्रदान करती है, जिनका आर्थिक मूल्य प्रायः दर्ज नहीं किया जाता। स्थानीय अनुसंधानों से स्पष्ट है कि उचित प्रबंधन और कलिकायन जैसी तकनीकों के माध्यम से खेजड़ी की उत्पादकता तथा उससे प्राप्त आय में वृद्धि संभव है (मेघवाल आदि 2–5)। बालुई क्षेत्रों में यह रेत के कटाव को नियंत्रित करती है, जबकि ग्रामीण बस्तियों के निकट चारा, ईंधन और घरेलू आवश्यकताओं की पूर्ति में सहायक होती है।

सूखा-प्रबंधन की दृष्टि से खेजड़ी का योगदान अत्यंत महत्त्वपूर्ण है। इसकी जड़ें मिट्टी की विभिन्न परतों से जल ग्रहण करती हैं, जिससे सतही फसल-जड़ों के साथ प्रतिस्पर्धा अपेक्षाकृत कम होती है। पत्ती-कचरा मिट्टी की संरचना को बेहतर बनाकर नमी संरक्षण में सहायता करता है। जब मेड़बंदी, अवशेष-संरक्षण और वर्षाजल-संचयन जैसी तकनीकों को खेजड़ी की उपस्थिति के साथ जोड़ा जाता है, तब खेत की सूखा-सहनशीलता बढ़ जाती है (बेनीवाल और जांगिड़ 19–24)। इसके अतिरिक्त, यह वृक्ष सूक्ष्म जलवायु को संतुलित कर पशुओं को छाया प्रदान करता है तथा लंबे शुष्क काल में भी हरित चारे की उपलब्धता बनाए रखता है। सूखे की स्थिति में इसकी पत्तियाँ और फलियाँ पशुधन के लिए संकट-कालीन पोषण का स्रोत बनती हैं, जिससे ग्रामीण परिवारों की आर्थिक सुरक्षा बनी रहती है (बोहरा 50–51)।

शेखावाटी की ग्रामीण अर्थव्यवस्था में कृषि और पशुपालन परस्पर पूरक हैं। खेजड़ी इस संबंध को सुदृढ़ करती है क्योंकि इसकी पत्तियाँ पशुओं के चारे के रूप में तथा सांगरी घरेलू उपभोग और बाजार दोनों के लिए उपयोगी है। विशेष रूप से महिलाओं की भूमिका इस व्यवस्था में महत्त्वपूर्ण है, क्योंकि चारा-संग्रह, पशुपालन, दूध-प्रसंस्करण और खाद निर्माण जैसे कार्य मुख्यतः उनके श्रम एवं अनुभव पर आधारित होते हैं (वारिस आदि, 2004)। अतः खेजड़ी-संरक्षण केवल पर्यावरणीय नहीं, बल्कि सामाजिक और लैंगिक सशक्तिकरण का भी प्रश्न है। खेजड़ी का संबंध पारंपरिक जल-संरक्षण प्रणालियों से भी गहराई से जुड़ा हुआ है। टांका, तालाब, नाड़ी, कुण्ड और खड़ीन जैसी संरचनाएँ वर्षाजल को स्थानीय स्तर पर रोकने और संरक्षित करने की भारतीय परंपरा का हिस्सा रही हैं (मिश्र, 1995)। वृक्ष, घास और झाड़ियाँ मिलकर सतही बहाव को नियंत्रित करती हैं तथा जल के अंतःस्रवण को बढ़ावा देती हैं। इसलिए खेजड़ी का संरक्षण जलागम विकास, चारागाह प्रबंधन और वर्षाजल-संचयन कार्यक्रमों के साथ एकीकृत रूप में किया जाना चाहिए।

हालाँकि कृषि-आधुनिकीकरण ने उत्पादन और सिंचाई सुविधाओं का विस्तार किया है, परन्तु इसके साथ कुछ पारिस्थितिक चुनौतियाँ भी उभरी हैं। अत्यधिक जुताई, रासायनिक निवेश, वृक्ष-विहीन कृषि प्रणाली, भूजल दोहन तथा रोग एवं कीट आक्रमण खेजड़ी की घटती संख्या के प्रमुख कारण हैं (शुष्क वन अनुसंधान संस्थान 1; माथुर 4–6)। इसके साथ ही स्थानीय पारंपरिक ज्ञान—जैसे छँटाई, चारा-संग्रह, सांगरी प्रबंधन और वृक्ष-आधारित कृषि तकनीकें—भी धीरे-धीरे कमजोर हो रही हैं। इसलिए आवश्यक है कि पारंपरिक ज्ञान को आधुनिक वैज्ञानिक तकनीकों, जैसे रोग-नियंत्रण, मौसम-पूर्वानुमान और जल-बजट प्रबंधन, के साथ समन्वित कर खेजड़ी-आधारित कृषि-पारिस्थितिकी का पुनर्जीवन किया जाए। यही दृष्टिकोण शेखावाटी क्षेत्र में दीर्घकालिक सूखा-लचीलापन और सतत ग्रामीण विकास की आधारशिला बन सकता है।

5. परिणाम : पहला प्रमुख परिणाम यह है कि खेजड़ी का सूखा-लाभ किसी एक गुण से नहीं, सेवाओं के संयोग से उत्पन्न होता है। नत्रजन-स्थिरीकरण और पत्ती-कचरा मृदा-उर्वरता को सहारा देते हैं; गहरी जड़ें संसाधन-

विभाजन करती हैं; छाया सूक्ष्म ताप-तनाव घटाती है; सांगरी और लूंग उत्पादन-विविधता देते हैं; तथा पशुधन इस जैविक संपदा को खाद और आय में रूपांतरित करता है। दूसरे शब्दों में, खेजड़ी 'उपज बढ़ाने वाला निवेश' कम और असफलता को फैलाकर उसका आघात घटाने वाला तंत्र अधिक है (समादिया 2–3; बोहरा 50–51)।

दूसरा परिणाम स्थानिक है। शेखावाटी में खेजड़ी की भूमिका भूमि-रूप, मिट्टी, वर्षा, बस्ती-दूरी और भूजल-दबाव के अनुसार बदलती है; अतः पूरे क्षेत्र के लिए एक समान रोपण-मॉडल उपयुक्त नहीं होगा। रेतीले भागों में वायु-क्षरण रोकना और चारा प्रमुख हो सकता है, पादप्रदेशों में मृदा-संरक्षण तथा खेत-वृक्ष संयोजन, और घनी कृषि वाले हिस्सों में जड़-क्षति से बचाव तथा वृक्ष-स्थान नियोजन अधिक महत्त्वपूर्ण होंगे (जांगिड़ 96–101; कालीचरण सिंह 37–44)। यही भौगोलिक भिन्नता संरक्षण नीति को ग्राम और भू-दृश्य स्तर पर विकेंद्रीकृत करने की माँग करती है।

तीसरा परिणाम यह है कि वर्तमान कृषि-गहनता को सूखा-लचीलापन का पर्याय नहीं माना जा सकता। अधिक फसल-चक्र और सिंचाई सामान्य वर्ष में आय बढ़ा सकते हैं, पर गिरता भूजल, वृक्ष-ह्रास और चारा-संकट खराब वर्ष में जोखिम को केंद्रित कर देते हैं। सीकर के भूजल-अध्ययन और झुंझुनू की शस्य-गहनता के निष्कर्ष साथ पढ़ने पर स्पष्ट होता है कि उत्पादन-वृद्धि की दीर्घकालिकता तभी संभव है, जब भूजल-निकासी, वर्षाजल-संचयन और खेत-वृक्ष घनत्व में संतुलन हो (यादव, 2021; जानू 2051–2054)।

6. संरक्षण और पुनर्जीवन की भौगोलिक दिशा : प्रथम आवश्यकता खेजड़ी को कृषि भूमि पर 'अवशिष्ट वृक्ष' नहीं, उत्पादक प्राकृतिक पूँजी मानने की है। ग्राम-स्तर पर परिपक्व वृक्षों, युवा पौधों, रोगग्रस्त वृक्षों और रिक्त खेत-खंडों का भू-अंकित अभिलेख तैयार किया जाना चाहिए। छत्र-सीमा के भीतर गहरी जुताई पर नियंत्रण, रोगग्रस्त जड़ों का सुरक्षित निष्पादन, वृक्ष-थालों का उपचार और स्थानीय श्रेष्ठ सांगरी-वृक्षों का कलिकायन एकीकृत कार्ययोजना में शामिल हों (शुष्क वन अनुसंधान संस्थान 1; मेघवाल आदि 3–5)। रोपण-सफलता की गणना केवल लगाए पौधों से नहीं, पाँच वर्ष बाद जीवित और उपयोगी वृक्षों से होनी चाहिए।

दूसरी आवश्यकता खेत, चारागाह और जलागम को एक इकाई मानने की है। मेड़बंदी, फसल-अवशेष संरक्षण, स्थानीय घासों की पट्टियाँ, नियंत्रित चराई, जोहड़–कुण्ड पुनर्जीवन और मौसम-सलाह को खेजड़ी-आधारित मिश्रित खेती से जोड़ा जाए। महिला पशुपालक समूहों और ग्राम संस्थाओं को लूंग-संग्रह, पौधशाला, सांगरी-प्रसंस्करण तथा चारा-बैंक में भागीदारी दी जाए, ताकि संरक्षण आय और पोषण से संबद्ध हो (बेनीवाल और जांगिड़ 19–24; वारिस आदि, 2004)। ऐसी नीति सूखे को केवल राहत-वितरण का प्रसंग न बनाकर परिदृश्य की पूर्व-तैयारी में बदल सकती है।

7. निष्कर्ष : खेजड़ी शेखावाटी के खेत में खड़ी एक जीवित संधि है। मिट्टी और अन्न के बीच, वृक्ष और पशु के बीच, वर्षा और स्मृति के बीच। उसकी शक्ति इस तथ्य में नहीं कि वह सूखे को समाप्त कर देती है, बल्कि इसमें है कि वह सूखे के आघात को अनेक संसाधनों में बाँट देती है। फसल कम हो तो चारा, चारा बचे तो पशु, पशु बचे तो दूध, खाद और अगली बुवाई की संभावना बचती है। यही क्रम कृषि-परितंत्र को टूटने के बजाय झुककर फिर उठने की क्षमता देता है (नारायण, कविया और सिंह 7–12; समादिया 1–3)।

अतः शेखावाटी का भविष्य अधिक जल खींचने वाली कृषि के विस्तार में नहीं, उपलब्ध जल के भीतर विविध जीवन-रूपों को टिकाने में है। खेजड़ी-संरक्षण को जल-संचयन, भूजल-बजट, चारागाह, स्थानीय फसल-विविधता और स्त्री-केंद्रित पशुधन अर्थव्यवस्था से जोड़ना होगा। आधुनिक विज्ञान और लोक-अनुभव का यह संवाद ही उस भूगोल को पुनर्जीवित कर सकता है, जिसमें वृक्ष उत्पादन का प्रतिद्वंद्वी नहीं, उसकी दीर्घकालिक शर्त है (मिश्र, 1995; कर और चारण, 2009)।

संदर्भ सूची:

1. कर, अमल, और मधुबाला चारण, संपादक. मरु क्षेत्र में कृषि प्रबन्धन. केंद्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर, 2009।

2. केंद्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान और भारत मौसम विज्ञान विभाग. किसान जागरूकता कार्यक्रम: मौसम आधारित कृषि सेवा. केंद्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर, एवं भारत मौसम विज्ञान विभाग, पुणे, 2010।
3. जांगिड़, भूपेन्द्र कुमार. “शेखावाटी प्रदेश की भू-गर्भिक व स्थलाकृतिक संरचना और भौगोलिक स्वरुप का अध्ययन.” जर्नल ऑफ रिसर्च एंड डेवलपमेंट, खंड 17, अंक 5, मई 2025, पृ. 88–104।
4. जानू, धर्मवीर. “कृषि विकास एवं शस्य गहनता का बदलता प्रारुप: झुंझुनू जिले का एक भौगोलिक अध्ययन.” इंटरनेशनल जर्नल ऑफ इनोवेटिव रिसर्च इन साइंस, इंजीनियरिंग एंड टेक्नोलॉजी, खंड 11, अंक 11, नवम्बर 2022, पृ. 2046–2054।
5. नारायण, प्रताप, जबरदान कविया, और हरपाल सिंह. “मरुक्षेत्र में जल प्रबन्धन द्वारा सूखे से निपटने की रणनीति.” शुष्क क्षेत्रों में सूखा प्रबन्धन नीति एवं आय उपार्जन, संपा. हरपाल सिंह आदि, केंद्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर, 2004, पृ. 7–12।
6. बेनीवाल, रिद्ध करण, और राम पाल जांगिड़. “बारानी खेती में नमी संरक्षण एवं फसल उत्पादन के उपाय.” शुष्क क्षेत्रों में सूखा प्रबन्धन नीति एवं आय उपार्जन, संपा. हरपाल सिंह आदि, केंद्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर, 2004, पृ. 19–24।
7. बोहरा, एच. सी. “खेजड़ी पर्णों को उपचारित कर इनकी पोषकता बढ़ायें.” सम्पूर्ण एवं पूरक पशु-आहार बट्टिका उत्पादन तकनीकी: त्रिदिवसीय पशु-कृषक प्रशिक्षण, 11–13 फरवरी 2008, पशु-आहार तकनीकी इकाई, पशु विज्ञान एवं चारा उत्पादन प्रभाग, केंद्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर, 2008, पृ. 50–51।
8. माथुर, अनीता. “राजस्थान के कल्प वृक्ष खेजड़ी पर जलवायु परिवर्तन का प्रभाव.” जर्नल ऑफ एडवांसेज़ एंड स्कॉलरली रिसर्चेज़ इन एलाइड एजुकेशन, खंड 4, अंक 7, जुलाई 2012, पृ. 1–7।
9. मिश्र, अनुपम. राजस्थान की रजत बूँदें. गांधी शांति प्रतिष्ठान, नई दिल्ली, 1995।
10. मेघवाल, पी. आर., अकबर सिंह, सुरेश कुमार, एम. एम. रॉय, और प्रदीप कुमार. उत्तम सांगरी के लिए खेजड़ी में कलिकायन एवं उत्पादन प्रबंधन. केंद्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर, 2012।
11. यादव, महावीर सिंह, और सन्तोष कुमार शर्मा. “रेगिस्तान में चारागाह स्थापना तथा फसल, घास एवं वृक्षों की प्रजातियों का चयन एवं प्रबन्धन.” शुष्क क्षेत्रों में सूखा प्रबन्धन नीति एवं आय उपार्जन, संपा. हरपाल सिंह आदि, केंद्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर, 2004, पृ. 45–52।
12. यादव, राजेन्द्र कुमार. सीकर जिले में गिरते भूजल स्तर का कृषि एवं पशु सम्पदा पर प्रभाव. पीएच.डी. शोध-प्रबन्ध, कोटा विश्वविद्यालय, 2021।
13. सिंह, रविशंकर, और सुरेन्द्र पुनिया. “जलवायु, मानसून एवं मौसम पूर्वानुमान.” शुष्क क्षेत्रों में सूखा प्रबन्धन नीति एवं आय उपार्जन, संपा. हरपाल सिंह आदि, केंद्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर, 2004, पृ. 1–6।
14. वारिस, अमतुल, अरुण कुमार शर्मा, आलोक चन्द माथुर, और प्रताप नारायण. ग्रामीण महिलाओं में पशुपालन एवं गृहवाटिका द्वारा उद्यमिता का विकास. केंद्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर, नवम्बर 2004।
15. शुष्क वन अनुसंधान संस्थान. राजस्थान के उत्तर-पश्चिमी जिलों में खेजड़ी वृक्ष की मर्त्यता के कारण एवं प्रबंधन. कृषि वानिकी विस्तार प्रभाग, शुष्क वन अनुसंधान संस्थान, जोधपुर, 2011–12।
16. समादिया, दिलीप कुमार. खेजड़ी: बागवानी आधारित फसल सुधार एवं तकनीकी विकास. भाकृअनुप–केंद्रीय शुष्क बागवानी संस्थान, बीकानेर, 2022।
17. सैनी, विनोद कुमार. “सीकर जिले में कृषि आधुनिकीकरण में कृषि यंत्र का प्रभाव.” इंटरनेशनल जर्नल ऑफ अकादमिक रिसर्च एंड डेवलपमेंट, खंड 2, अंक 5, सितम्बर 2017, पृ. 1003–1007।
18. सिंह, हरपाल, मनजीत सिंह, नन्दलाल व्यास, जबरदान कविया, और प्रताप नारायण, संपादक. शुष्क क्षेत्रों में सूखा प्रबन्धन नीति एवं आय उपार्जन. केंद्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर, 2004।
19. सिंह, कालीचरण. “भू-उपयोग योजना: शुष्क क्षेत्रों हेतु एक घास आधारित कृषि पद्धति.” शुष्क क्षेत्रों में सूखा प्रबन्धन नीति एवं आय उपार्जन, संपा. हरपाल सिंह आदि, केंद्रीय शुष्क क्षेत्र अनुसंधान संस्थान, जोधपुर, 2004, पृ. 37–44।

•